'द फिफ्थ डिसिप्लिन'

❑ डॉ. राजेश्वर सक्सैना

यहां पीटर एम. सेंज की चर्चित पुस्तक 'द फिफ्थ डिसिप्लिन' पर समीक्षा है । आज के इस 'उत्तर-आधुनिक' समय में जीवन की वस्तु किस तरह हवा-हवाई हो गई है । इस दौर में तो नए संज्ञान और नए सृजन का कोई वजन ही नहीं रह गया है । सत्य ही ध्वस्त हो गया है । कारणाएं ही विलुप्त हो गई हैं। पीटर एम. सेंज की पुस्तक 'द फिफ्थ डिसिप्लिन' ऐसी उत्तर-आधुनिक विचारणाओं के विरुद्ध एक नया-रचना-तर्क और एक नया चिंतन आधार उपलब्ध करती है ।

'द फिफ्थ डिसिप्लिन' पुस्तक में ज्ञान के एक विशिष्ट क्षेत्र को 'कुछ निश्चित कौशलों और क्षमताओं को अर्जित करने के एक विकासमान पथ' के रूप में देखा गया है । इस पुस्तक में ज्ञान के इस क्षेत्र को एक पांचवा अनुशासन 'चिंतन प्रणाली' कहा है । लेखक पीटर एम. सेंज का स्पष्ट कथन है कि इस चिंतन प्रणाली के द्वारा ही अन्य अनुशासनों में तथा सिद्धांत और व्यवहार में अंतर-संगति बनी रह सकती है ।

वे लोग जो अपनी अनुभव परिधि से अधिक बड़े और विस्तृत क्षेत्र के बारे में धारणाएं बनाते हैं, सह-संबद्धता, अंत: क्रियात्मकता और पुनरुत्पादन के बारे में सोचते हैं, वे जो सृजनशील हैं और पुनर्सृजन की चिंता करते हैं, वे सभी, किसी न किसी तरह इस पांचवें अनुशासन का ही अनुमोदन करते हैं ।

पीटर एम. सेंज का कहना है कि यदि लोगों की सोच क्षणिक घटनाओं से शासित है तो वे लोग कभी भी पुनरुत्पादक नहीं हो सकते । सेंज का कहना है कि कोई भी व्यक्ति जो चिंतक और कल्पनाशील नहीं है, वह जीता तो रह सकता है लेकिन उस स्थिति में वह अपनी सम्पूर्ण जीवन-शक्ति के साथ कभी नहीं हो सकता । इसलिए प्रणालीगत गत्यात्मकता के भीतर हुए बगैर 'पूर्ण उभार की छवि' को समझदारी के अन्तर्गत लाया ही नहीं जा सकता। इसलिए सेंज ने अपनी इस पुस्तक में जगह-जगह पर प्रणाली की 'संजटिल गत्यात्मकता' (फिनोमेनल डाइनमिज्म) को स्पष्ट किया है । सेंज ने इस प्रणाली के जैविक रूप, उसके संरचनावादी गठन और तकनीकी अभिक्रिया की पृष्ठभूमि में समकालीन राजनीतिक अर्थशास्त्र की कुछेक मूलभूत समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है ।

चूंकि सेंज इस ज्ञान अनुशासन को 'एक विकासमान पथ' की तरह स्वीकार करते हैं, इसलिए, वे अपने आज और आने वाले कल की चिंता करते हुए यह भी स्पष्ट करते चलते हैं कि अब तो व्यक्तिवाद भी एक परंपरावादी दृष्टिकोण बन चुका है । पश्चिमी दुनिया में ये व्यक्तिवादी सोच और गैर-प्रणालीगत दृष्टि महत्त्वपूर्ण नहीं रह गई है। अब तो, दोनों की मिथकें बाकी रह गई हैं, सिर्फ अगुआई की मिथकें बाकी रह गई हैं । उस व्यक्तिवाद और उस गैर-प्रणालीगत दृष्टि के समस्त करिश्मे 'क्षणिक घटनाओं के फोकस' होकर रह गए हैं ।

इस पक्ष में विचार करते हुए सेंज अमेरिकी (प्रबंधन में चालू) उपयोगितावाद की भी स्पष्ट आलोचना करते हैं । सेंज ने पी. डी. यांकिलोविच के हवाले से भी आज के उपकरणवाद की आलोचना की है । सेंज अपनी आलोचना को विस्तार देते हैं, वे पश्चिमी भाषाओं की हर कमजोर नस को पकड़ते हैं । उनका मानना है कि पश्चिमी भाषाओं में 'ए लीनियर व्यू' के प्रति हमेशा ही एक पूर्वाग्रह बना रहा है । अत: इस तरह के भाषाई पूर्वाग्रह की वजह से वहां टुकड़ों की दृष्टि बनी रह जाती है । एक रेखीयता खिंची और तनी रह जाती है । अपने इस तरह के आलोचनात्मक मंतव्यों को खोलने के बाद सेंज यह प्रतिपादित करते हैं कि अस्वस्थ वह है जिसमें 'एक संपूर्ण को देने की योग्यता' नहीं रह जाती है ।

'द फिफ्थ डिसिप्लिन' पुस्तक पांच खंडों में विभक्त है । हमारे कार्यों से यथार्थ का सृजन कैसे होता है, और हम उसे कैसे बदल सकते हैं ? पांचवे अनुशासन में शिक्षा संगठन का स्वरूप और निर्माण, ज्ञान अनुशासनों के बीजकोश, प्रारूप तथा संहिता या सांकेतिकी के अतिरिक्त निज प्रवीणता, बौद्धिक कौशल, सांझी अंतदृष्टि और शिक्षा-विषयक परिभाषाएं भी दी गई हैं ।

पुस्तक में आंरभ से अंत तक 'बुनियादी आधारों की निपुणता' पर जोर दिया गया है । 'अर्थ के सृजन और उसके विन्यास' को व्याख्यायित किया गया है । इस बारे में लेखक का कथन स्पष्ट है। वह मानता है कि निपुणता का सवाल और सृजन तथा उसके विन्यास का सवाल परिप्रेक्ष्य की मांग करता है । उसका यह भी मानना है कि स्वयं को परिचालित, विस्तृत और परिपक्व करने की योग्यता, वास्तव में, एक विकासमान प्रक्रिया की तरह होती है।

लेखक जोर देकर यह भी रेखांकित करता है कि वस्तुनिष्ठ-यथार्थ के बदलाव में गहरी आस्था का और समझदारी का होना भी जरूरी है । लेखक के लिए तो यह संपूर्ण मामला 'अपने आप में जिंदगी से जुडे होने की महसूसियत' का है ।

दृष्टव्य है, इस पुस्तक में उत्तर-संरचनावादी भाषिकी से बचा गया है । इस पुस्तक में 'डिस्कोर्स' पद नदारद है । हां ! संवाद (डायलाग) पर तो बेहद वजन डाला गया है । पुस्तक में विज्ञान के संज्ञान को, संज्ञान की क्रिया को और उसके नये-से नये तकनीकी विन्यास को योरोप के 'लोगो सेंट्रिसिटी' के संदर्भ में ही देखा गया है । भाष्य विज्ञान और अर्थ-मीमांसा का कोई झमेला नहीं है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि पुस्तक में संवाद पर जोर है। कह सकते हैं कि एक तरह से, इस किताब में संवाद का पुनरान्वेषण किया गया है । संवाद के समकालीन अर्थ का गठन किया गया है। लेखक ने कई स्थलों पर संवाद-समूह की धारणाएं भी बनाई है । लेखक का कहना है कि संवाद से ही स्वयं का संचालन और विनिमयन संभव होता है। संवाद से रचनात्मक समृद्धि होती है । यह संवाद, अपने व्यापक अर्थ में 'एक संबध' होता है। इसमें पूर्वाभिमुख और पुनराभिमुख का द्वंद्व बना रहता है । यह संवाद 'एक विशुद्ध सहचिंतन' होता है ।

'द फिफ्थ डिसिप्लिन' पुस्तक की जो स्थापनाएं हैं, उनमें सबसे पहले उल्लेख करने लायक है, 'सर्जनात्मक तनाव' । पुस्तक में इस 'सर्जनात्मक तनाव' को परिभाषित किया गया है। 'सर्जनात्मक तनाव' की व्यावहारिक क्रिया को साबित किया गया है । 'अंतर्दृष्टि' और 'सर्जनात्मक तनाव' से इस पुस्तक की वस्तु अर्थात् प्रबन्ध तकनीकी और 'शिक्षण-व्यवस्था' या फिर अगली शताब्दी के उद्योग-विज्ञान, और फैक्टरी संगठन को तथा व्यवसाय करने के विज्ञान को आध्यात्मिक ऊंचाइयों तक उठाए जा सकने का तर्क भी दिया गया है ।

लेखक का मानना है कि अंतर्दृष्टि में और यथार्थ में खाली जगहें और दरारें होती हैं । यदि इन खाली जगहों और दरारों को पकड़ने का कोई प्रयत्न किया जाता है, तो इस प्रयत्न से नई ऊर्जा-नई स्फूर्ति पैदा होती है । यह भी कि ये खाली जगहें ही 'सर्जनात्मक ऊर्जा' का स्रोत होती हैं । इन खाली जगहों की वजह से अंतर्दृष्टि और यथार्थ में गत्यात्मकता बनी रहती है, प्रवाह बना रहता है। (पृष्ठ 150)

इसी संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए सेंज कहते हैं कि 'मनोवैज्ञानिक तनाव और 'सर्जनात्मक तनाव' में भेद होता है। यह लेखक की एक मूलभूत स्थापना है । इसे अभी तक शायद किसी ने नहीं पकड़ा है, सर्जनात्मक तनाव चिंता नहीं है, चिंता तो मनोवैज्ञानिक तनाव हैं ।'

इसी तरह ध्यान दीजिए...''सर्जनात्मक तनाव भी अक्सर चिंता से संबद्ध अनुभूतियों या भावनाओं जैसे दुख, निरुत्साह, असहायता या परेशानी से आविष्ट हो सकता है । ऐसा इस कदर होता है कि लोग इन भावनाओं को सर्जनात्मक तनाव से जोड़कर देखने लगते हैं । लोग यह सोचने लगते हैं कि चिंता की स्थिति कुल मिलाकर सृजनात्मक प्रक्रिया ही है । लेकिन यह समझना जरुरी है कि ये नकारात्मक भावनाएं तब भी उभर सकती हैं जबकि कोई सर्जनात्मक तनाव नहीं हो । यह भावनाएं असल में वह है जिसे हम भावनात्मक तनाव कहते हैं .. यदि हम सर्जनात्मक तनाव और भावनात्मक तनाव में अंतर कर पाने में असफल रहते हैं तो हम अपने जीवन-दृष्टि को संकीर्ण करने की ओर प्रवृत्त हैं '' । (151) ऐसा कहने के बाद भी लेखक का कहना यही है कि भावनात्मक तनाव की गत्यात्मकता मनुष्य के जीवन व्यापार के प्रत्येक स्तर पर मौजूद रहती है । किन्तु वह इसके सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष का ध्यान बनाये रखता है । वह इस तरह के भावात्मक समावेशन में सामान्यता की पहचान भी करता चलता है। लेखक सामरसेट माम का एक उदाहरण देता है, ''केवल औसत दर्जे के व्यक्ति ही सदैव मौज में रहते हैं'' ।

अंतर्दृष्टि और रचना-तनाव का जो संजाल होता है, वह इकहरा, इकतरफा, अधूरा और एककालिक हो ही नहीं सकता है। वह तो, एक तरह का 'गत्यात्मक संजाल' होता है । इसकी विशेषता यह होती है कि इस तरह की गत्यात्मक रचनाशीलता से अवचेतन-अर्धचेतन के विकास की एक वैज्ञानिक दृष्टि बनाई जा सकती है। स्पष्ट है कि अवचेतन-अर्धचेतन को, 'आटोमाईंड' को विकसित किया जा सकता है ।

लेखक मानता है कि यह अवचेतन, अब फ्रायडियन, नव फ्रायडियन और जुंगियन नहीं रह गया है । अब तो, यह आज के विज्ञान में 'साईबर युगीन संज्ञान' का विषय हो गया है । इसलिए अब, विज्ञान की एक कोटि के रूप में अवचेतन की नई व्याख्याएं अस्तित्व में आ गई हैं । अब तो, इस अवचेतन में सापेक्ष-निरपेक्ष, मूर्त-अमूर्त के द्वंद्ववाद की, वस्तुनिष्ठ यथार्थ का प्रतिपादन करने वाले द्वद्वंवाद की, संरचनावादी गत्यात्मक प्रणाली के उत्पादक के साथ द्वंद्ववाद की सहज, किंतु गहन संगति, कोई अजूबा नहीं रह गई है ।

लेखक ने तो 'अमूर्त की छलांगों' को भी पहचानने पर जोर दिया है । हर निरीक्षणगत और हर पर्यवेक्षणगत के सामान्य की

रचना में अमूर्त की छलांगों के महत्व को समझा जा सकता है। इन छलांगों को समझ लिए जाने के बाद, वह जो हाशिए पर छूट गया रहता है, कहीं लुका छिपा पड़ा रह गया रहता है, उसकी भी आकृतियां खड़ी होने लगती हैं । किंतु, लेखक इस तरह की छलांगों के प्रति हमें सावधान भी करता चलता है ।''

इस किताब में मनोवैज्ञानिक और भावात्मक तनावों की ऋणात्मकता तथा रचनात्मक-तनाव की धनात्मकता को चिन्हित करते हुए, अवचेतन के विकास की भौतिकमयता और उसकी संज्ञानिकता को रेखांकित करते हुए तथा मूर्त-अमूर्त की अंतक्रिया से वस्तुनिष्ठ की एक नई पहचान बनाते हुए पीटर-एम.सेंज अंतर्दृष्टि को ठोस 'विजन इज कॉन्क्रीट' कहते हैं । उनके कथनानुसार यदि यह अन्तर्दृष्टि ठोस नहीं है तो वस्तुनिष्ठ (यथार्थ) की सत्ता कायम नहीं हो सकती है । यदि यह विजन ठोस नहीं है तो भौतिक यथार्थ के साथ तर्क का गठन नहीं हो सकता है । और यह कि यदि यह विजन ठोस नहीं है तो आप में वह कुव्वत नहीं आ सकती है कि 'अन्न-प्राण-मन और ज्ञान' की संगति का कोई विज्ञान खड़ा कर सके।

इस पुस्तक में सैकड़ों नए बीजपद हैं । इन बीजपदों की मदद से जीवन की नई वस्तु के पूरे वजन को सही-सही तौलने, और तब उसके बाद, उनका ठीक ठीक विनिमयन करने पर ध्यान खींचा गया है ।

पीटर-एम.सेंज की स्थापना यह है कि विजन ठोस है, किंतु हर उद्देश्य (परपूज) अमूर्त होता है । सेंज ने विजन के साथ उद्देश्य की परस्परता को स्पष्ट किया है । विजन एक निर्मिति है । यह निर्मिति निज प्रवीणता (बहुत ही उच्च कोटि की) से संबंद्ध है । यह 'पर्सनल मास्टरी' या निज प्रवीणता उच्चतर, श्रेष्ठतर और परिपक्वतर की एक विकासमान प्रक्रिया है। सेंज बहुत आगे आकर यह कहते हैं कि बगैर इस 'पर्सनल मास्टरी' के स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही नहीं हो सकता। स्वतंत्रता के संदर्भ में जागरुकता और आवश्यकता पर पहले भी विचार किया गया है। उस जागरूकता और इस निज प्रवीणता में साम्य दिखाई देता है। ''लोग सोचते हैं कि वे स्वतंत्र हैं । किंतु ऐसे लोगों की स्वतंत्रता के बारे में सोच प्रकृतिवादी होती है ।''

सेंज ने ओ-ब्रीन के हवाले से कहा है, ''वे बन्धनों के अधिक गहरे और अधिक भीतरी स्वरूप में बंधे हुए कैदी हैं ... उनके पास दुनियां को देखने का मात्र एक ही तरीका है '' सेंज के लिए '..... से स्वतंत्रता' की अपेक्षा... 'की स्वतंत्रता' का अर्थ महत्वपूर्ण है । ''जो चीजें हम सच में करना चाहते हैं इसके लिए स्वतंत्रता । यह वो स्वतंत्रता है जिसे लोग निज निपुणता हासिल करने के लिए चाहते हैं ... कुछ नया उत्पन्न करने की आकांक्षा... जो लोगों के लिए मूल्य और अर्थ रखता हो ।'' (286) इस तरह सेंज के लिए स्वतंत्रता वह है जिससे लोग इस जगत से, जगत के व्यापार से तथा जगत के यथार्थ से संबंद्ध होते हैं । पुस्तक में एक उद्धरण है जिसकी एक पंक्ति है : 'स्वतंत्र मनुष्य वह है जो निरंकुश स्वेच्छाओं से रहित इच्छाएं रखता है ।' (357) स्पष्ट है कि कोई भी स्वतंत्रता 'पर्सनल-मास्टरी' की शिक्षण प्रक्रिया से अभिन्न होती है । सेंज, तभी कह पाते हैं कि सही स्वतंत्रता ''जटिलताओं के कारणों को प्रकाशित करती है ....।''

सेंज आविर्भावित या निर्गमित अंतर्दृष्टि में यथार्थ के प्रवाह और प्रतिबिंबनशीलता के खुलेपन की विस्तार से व्याख्या करते हैं। सेंज यह बतलाना चाहते हैं कि कोई भी अंतर्दृष्टि एकाकीपन में बुझने लगती है । इसलिए, साझी अंतर्दृष्टि के बगैर 'चिंतन-प्रणाली' के व्यावहारिक और आलोचनात्मक मंतव्यों तक नहीं पहुंचा जा सकता है । उनका स्पष्ट कथन है कि 'विजन तभी एक जीवंत शक्ति बन सकता है जबकि लोगों को यह भरोसा हो कि वे भविष्य में हिस्सेदारी कर सकते हैं।' (231) ऐसे में काल की गति 'तीव्र' और 'धीमी' होती रहती है । सूक्ष्म जगत और यथार्थ एकरूप होते रहते हैं । इस संदर्भ में सेंज का कहना है कि भविष्य की सूक्ष्म दुनियां अधिक नाजुक तरीकों में पल्लवित होगी, उसमें ज्ञान के अनेक अनुशासन होंगे । (337) पीटर एम. सेंज आने वाले कल का अर्थ निरूपण करते हैं। वे आज और कल के यथार्थ-संज्ञान की प्रकृति में भेद करते हैं । हम सभी अपने आप में पूछते हैं ;''यह क्या है?'' कल का बालक पूछेगा, ''वस्तुएं कैसे क्रिया करती हैं ?'' सेंज का कथन है कि भविष्य में ''सूक्ष्म जगत के संजालों का सहज ग्रहण संभव है । कम्प्यूटर के साथ हमारे संपूर्ण भावजगत-ज्ञानजगत का अभिन्न हो जाना संभव है । हालांकि मानवीय प्रणालियां अनंत और जटिल हैं ।''

ऐसे भविष्य की परिकल्पना में विच्युतियों और ऋणात्मकताओं के बारे में कोई स्पष्ट समझदारी बनानी पड़ेगी । नतीजों को अनुकूल करने के लिए क्षमता विकसित करनी होगी । सही कार्य-कारण संबंधों तक पहुंचना होगा । और इसके वास्ते नए कोड, नई संहिता, नई संकेतिकी की जरूरत होगी ।

सेंज ने 'अवचेतना की अधिक से अधिक प्रोग्रेमिंग' करने वाली भाषा पर ध्यान केंद्रित करना चाहा है । सेंज उस भाषा की मांग करते हैं जिसमें 'उच्चतर क्रियाओं के उद्वेलन को संतुलित और

संचरित' किया जा सकता है । सेंज के अनुसार 'संकेतिकियां रूपांतरित' होती रहती हैं । ज्ञान की रचना बदलती रहती है । विकास की प्रक्रिया में 'भाषा का इथास्' बदलता रहता है ।

पुस्तक के बारे में कुछ निष्कर्ष - ध्यान रहे कि यह पुस्तक प्रबंधन विज्ञान और कला की है । प्रबंधन में शिक्षण-संगठन की है। पुस्तक में अमेरिकन, यूरोपियन और एशियन प्रबंधकियों का उल्लेख किया गया है । इसमें जापान के 'जस्ट-इन-टाईप' और 'संपूर्ण गुणवत्ता' का जिक्र है । पुस्तक में नवें दशक और आगे के, भविष्य की पहलों पर चिंता की गई है । नए ज्ञान की नई समस्यात्मकता पर केन्द्रित चिन्तन है ।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि विज्ञान-तकनीकी और उद्योग की नई संगति में, उत्पादन-वितरण-उपभोग की नई सांख्यिकी में एक ठोस प्रणाली-गतिशीलता की तलाश की गई है । इसके लिए निपुणता, प्रवीणता, विशेषज्ञता अर्थात् गुणात्मकता के प्रत्यक्ष (बोध) और संज्ञान (क्रिया) की विस्तार से चर्चा हुई है ।

इस पुस्तक में सैकड़ों नए बीजपद हैं । इन बीजपदों की मदद से जीवन की नई वस्तु के पूरे वजन को सही-सही तौलने, और तब उसके बाद, उनका ठीक ठीक विनिमयन करने पर ध्यान खींचा गया है ।

आज के इस 'उत्तर-आधुनिक' दौर में जीवन की अर्थवत्ता किस तरह हवा-हवाई हो गई है । इस दौर में नए संज्ञान और नए सृजन का कोई वजन ही नहीं रह गया है । सत्य ही ध्वस्त हो गया है । कारणाएं ही विलुप्त हो गई हैं । पीटर एम. सेंज की पुस्तक 'द फिफ्थ डिसिप्लिन' कथित उत्तर-आधुनिकता के विरुद्ध एक नया-रचना-तर्क और एक नया भौतिक आधार मुहैय्या करती है ।

इस पुस्तक में संरचनावादी नृविज्ञान के सांस्कृतिक भौतिक चिंतन का संदर्भ स्पष्ट किया गया है । किंतु, 'सिद्धांत', 'क्रिया' और सार की संगति में 'प्रतिबिंबनशील खुलेपन' की दृष्टि अपनाई गई है । निरंतरता में परिष्कृत और परिपक्वता की सैद्धांतिकी खड़ी की गई है । इस वजह से एक नई ज्ञानमीमांसा को खड़ा करने में सहायता मिलती है । यह पुस्तक हीडेगेरियन-देरीदियन की ओर नहीं खींचती हैं ।

इस पुस्तक के द्वारा विज्ञान के व्यवहार-दर्शन और सामाजिक जगत के इतिहास दर्शन में छलांग लगाई जा सकती है । संभावना-गठन के बारे में, एक द्वंद्वात्मक भौतिकवादी-ऐतिहासिक भौतिकवादी को इस किताब से प्रशिक्षित होना जरूरी हो जाता है ।

वैसे तो, मानव संसाधन पद संरचनावादी नृविज्ञान का है । इस पद की उत्तर आधुनिकतावादी दृश्यगत प्रवृत्ति में 'मैं मेरी जगह हूं' के सस्यूरवादी चिन्ह खड़े हो गये हैं । 'मैं मेरी जगह हूं' का परिणामवाद खड़ा हो गया है । इसके बाद भी, सेंज के कथ्य-कथन में 'प्रणाली संरचना';'प्रणालीगत क्रियाशीलता' और 'प्रणाली चिंतन' में एक भिन्न प्रकार की स्थिति बनती है ।

यदि मैं (सेल्फ) एक 'वैयक्तिक प्रवीणता' का प्रतिनिधि है, या कि, वह एक सृजनकर्ता है - तब तो फिर-नृविज्ञान को अथवा प्राकृतिक-सामाजिक को ऐतिहासिक में उठने की आवश्यकता साबित होती रहेगी । इतिहास में यह 'मैं मेरी जगह हूं' वाला कर्त्ता-विशिष्ट हो जाता है, उपभोक्ता-विशिष्ट नहीं ।

यह पुस्तक क्रिया, नीति और सार को थामकर संरचना और इतिहास की बहस को नई प्रेरणा देती है । यह पुस्तक 'प्रणाली-आद्यरूप' (संरचनावादी नृविज्ञान का पद) तथा 'ऐतिहासिक प्रणाली' (द्वंद्ववाद-भौतिक-ऐतिहासिक) में द्वंद्व पैदा करती है । चूंकि, सेंज हर क्षण 'सर्जनात्मक अंतर्दृष्टि' और 'यथार्थ के बदलाव' पर ही टिके दिखाई देते हैं, इसलिए पुस्तक में प्रयुक्त पद 'आद्यरूप' के देशकाल सापेक्षता की और उसके भौतिक संज्ञान की अवहेलना नहीं की जा सकती है । इस आद्यरूप की तकनीकी व्यवस्था और उसके विज्ञान की व्यवस्था को पृथक नहीं किया जा सकता ।

ऐसे में, एक द्वंद्ववादी का काम इस 'प्रणाली-आद्यरूप' को ध्वस्त करने का नहीं हो सकता है। उसका काम तो इस 'प्रणाली-आद्यरूप' में अन्न-प्राण के स्पंदन उन्मेषन का तथा मनोमय-ज्ञानमय के स्पंदन उन्मेषन को संयोजित (व्यावहारिक) करने का हो सकता है । उसका काम तो आद्यरूप और पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को एकरस करने का हो सकता है । 'रूप' (की सत्ता) एक द्वंद्ववादी के लिए प्रक्रिया का विधान भी होता है और वह एक चरितार्थ भी होता है । क्या कोई रूप अर्थ (नियोजन) की सत्ता को नकार सकता है ? यदि नहीं, तो आद्यरूप को सप्राण बनाया जा सकता है, उसे विकास की परंपरा में लाया जा सकता है। 'आद्यरूप' को द्वंद्ववाद से पकड़ा और खोला जा सकता है ।

यह सही है कि सेंज को पश्चिम के प्रत्यक्षवाद से प्रेरणा मिलती है । यह भी सही है कि वह विज्ञान की संरचनावादी-व्याख्या से संबद्ध है । किंतु वह परिणामवादी व्यवहारवाद का सख्त विरोधी है । अत:, आज जबकि प्रत्यक्ष प्रमाणवाद नि:शेष हो गया है, वह शक्ति क्षीण हो गया है और संरचनावाद के 'जैविक' पर विचार किया जाने लगा है, उसमें 'उत्पादक संगति' का प्रयोग संभव हो गया है - तब फिर द्वंद्ववादोन्मुख होकर काम करने की नई परिस्थिति भी बन गई है । इसीलिए, इस पुस्तक की व्याख्या करते हुए, एक

या दो बार, यह संकेत अवश्य दिया गया है कि 'सांस्कृतिक-भौतिक' की भूमिका पर, यह किताब नीत्शे-हीडेगर-देरिदा की धारा को अस्वीकार करती चलती है ।

इस पुस्तक की रचना का बुनियादी अर्थ कहां और कैसे खुलता है ? इसके लिए सेंज के इस दृष्टांत का हवाला देना जरूरी है । सेंज ने गिलास में पानी भरने का एक दृष्टांत दिया है । इस दृष्टांत में सेंज 'अंतराल', 'स्तर' और 'लक्ष्य' के द्वारा 'जल-नियमिन-प्रणाली' के प्रवहमान और वांछित (करेंट एंड डिजायर्ड) में ऊंची नीची स्थितियों (पोजीशन्स) की तथा समायोजन के विविध स्तरों की मीमांसा करते हैं । इस दृष्टान्त से सेंज कारण कार्य की संगति में अनेकानेक चक्रों की फीड बैक प्रणाली को भी स्पष्ट करते हैं । वह इस दृष्टांत से अनुभववाद के एकरेखीय सुविधाजनक तथ्यवाद की आलोचना करते हैं । उसका यह मानना है कि प्रबलन (री-इंफोर्सिंग) और संतुलन (बेलेसिंग) की फीड बैक प्रक्रियाओं से वांछित-निर्धारण को या वांछित स्थायित्व को पाया जा सकता है। सेंज का कहना है कि संतुलन सोद्देश्य होते हैं । यदि जीव-विज्ञान में इस संतुलन को देखें तो पता चलेगा कि बदले हुए वातावरण में जीवित रहने के लिए शरीर भिन्न तरह के समायोजनों के लिए तैयार होने लगता है ।

यह संतुलन उद्यत भी करता है - जैसे 'नींद आ रही है, सो जाओ । भूख लगी है कुछ खा लो । सर्दी है, कपड़े पहनो ।' सबसे बड़ी बात यह है कि सेंज नियोजन के द्वारा 'दूरागत संतुलन की प्रक्रिया' और 'क्षणिक प्रक्रिया' में भेद करते है । (86) कह सकते हैं कि जहां जड़ता है, यथास्थिति है, या फिर परिवर्तन का विरोध है - वहां हर प्रकार का संतुलन अनुदारवादी-परंपरावादी स्थिति में 'विलंब' को या देर को पहचानने में रोडे अटकाता है । बल्कि इस तरह के संतुलन की वजह से देर के या विलंब के बारे में कोई अनुभव ही नहीं हो पाता है। फलस्वरूप, यह देर या विलंब फीड बैक प्रोसेस में एक रूप लेने लगता है । और तब, इस संतुलन की प्रकृति बदलने लगती है । अत: सेंज का कहना है कि इस विलंब को पढ़ने के लिए 'फीड बैक लूप' (फंदे) को पकड़ने के लिए बड़ी कशमकश करनी पड़ती है ।

पीटर-एम सेंज ने अपनी चिंतन प्रणाली से 'जगत के सत्य', वस्तुनिष्ठ यथार्थ और ''अपने आप में जीवन से सम्बद्धता के अनुभव'' को पुष्ट किया है । आज के नए परिदृश्य में 'ऐतिहासिक भौतिक' चिंतन के विकास में सेंज के प्रतिपादन से लाभ उठाया जा सकता है ।

सेंज की पुस्तक में द्वंद्ववाद का उल्लेख कतई नहीं है । सिर्फ एक जगह पर 'एक रणनीति के तहत आन्तरिक अन्तर्विरोधों को खोजने'' का उल्लेख है (316) । फिर भी हमारा कहना यह है कि 'द फिफ्थ डिसिप्लिन' पुस्तक की पद्धति से द्वन्द्ववाद को बल मिलता है । हर 'कल' हमारे 'आज' का ऐतिहासिक संवाद होता है । हमारा ऐतिहासिक प्रत्यक्ष और ऐतिहासिक ज्ञान होता है। इस ऐतिहासिक 'बोध और ज्ञान' के बगैर 'आज' का कर्ता पक्ष अपनी प्रतिबद्धताओं को साबित नहीं कर सकता है और दायित्व का सवाल भी निरपेक्ष रह सकता है । इसलिए, हमारा कहना यह है कि कल के साथ आज का, यदि कोई मानवीय रिश्ता हो सकता है, तो वह पुनरोत्पादन-पुनर्सृजन की प्रक्रिया वाला ही हो सकता है। मानवीय रिश्तों का (मानव बोध और ज्ञान का) कोई भी रूपांतरण वास्तव में, कल के साथ आज का वह द्वंद्व होता है, जो पार जा-जाकर, ठोस रुपाकार पाकर नए-नए सार का रूप -स्वरूप गठन करता है। अत: आज के इस नए परिदृश्य में सेंज की पद्धति को द्वंद्ववाद में घटाकर इतिहास-दर्शन की एक नवीन सैद्धांतिकी रची जा सकती है। एक नई भाषा खड़ी की जा सकती है ।

अतएव, 'इतिहास' मरा नहीं है । 'संभावना' खत्म नहीं हुई है । हां अस्तित्व की नई परिस्थिति में कल के साथ आज का द्वंद्व-न्याय पिछड़ गया है । हमारे संपूर्ण ज्ञान का साईबरीकरण हो रहा है। तब फिर, ऐसी नई परिस्थिति में 'विलंबन' की पहचान करने से एक प्रेरणा मिलनी चाहिए । अब, नई पहल का कोई भी सवाल विलंबन के बोध और संज्ञान की चुनौती बन गया है । किंतु जो लोग, इस विलंबन को ही 'इतिहास' समझ बैठे हैं, वे न तो 'निर्गमनात्मक' को समझते हैं, न 'प्रवर्तते' को समझते हैं और न रूपांतरण की प्रक्रिया से कोई शिक्षा हासिल करते हैं ।

यह इतिहास (प्रत्ययी) है, जो विलंबन के विरुद्ध की जाने वाली हर पहल का प्रेरक होता है । इतिहास आवश्यकता की क्रियाशक्ति होता है । यह इतिहास विज्ञान के दार्शनिक मंतव्यों की व्यावहारिकता भी होता है । पीटर-एम. सेंज का निष्कर्ष भी यही है कि जीवन की नई वस्तु से भिड़ते हुए अर्थात नई वस्तु के साथ गति करते हुए ही रचनात्मक तनाव में रहा जा सकता है ।

इस तरह, अब मनुष्य के 'आज' में 'पुकारती भविष्य-दृष्टि' ही हर नए रचनात्मक शिक्षण का विषय बन गई है । ◆